International Journal of Leading Research Publication (IJLRP)

E-ISSN: 2582-8010 ● Website: www.ijlrp.com ● Email: editor@ijlrp.com

भारतीय सिनेमा में जनजातीय चित्रण; ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भ

प्रियंक कुमार रोकड़े[1] , डॉ. गीता चौधरी[2]

1 शोधार्थी (इतिहास), 2 प्राध्यापक (इतिहास)

श्री अटल बिहारी वाजपायी कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इंदौर

भारत में आदिवासी / जनजाति समुदाय को प्राचीन काल से ही अलग-अलग नामों से जाना जाता है जैसे- "वनवासी", "गिरिजन", "आटविक" आदि। ब्रिटिश औपनिवेशिक काल में आदिवासी समुदायों को ट्राइबल (Trible) कहा जाने लगा अंग्रेजों ने भी इन्हें प्राचीन और मध्यकाल के शासको के भांति अलग-थलग ही रखा। स्वतंत्रता के बाद ही भारत सरकार द्वारा उन्हें विशेष दर्जा दिया गया और संवैधानिक रूप से अनुसूचित जनजातीय के रूप में मान्यता दी।

आदिवासी या जनजातीय शब्द भारत के आदिवासी समुदायों की पहचान और उनके अधिकारों के संघर्ष का प्रतीक है। कुछ लोग जनजातीय शब्द का विरोध करते हैं क्योंकि उनका मानना है कि यह शब्द आदिवासी समुदाय को मुख्य धारा से अलग करता है। तो वहीं कुछ आदिवासी नेताओं और बुद्धिजीवीयों द्वारा आदिवासी शब्द को प्राथमिकता दी जाती हैं क्योंकि यह शब्द उनके मूल निवासी होने की पहचान को स्थापित करता है। यह शब्द प्रशासनिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ में व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है। हालांकि इस शब्द का प्रयोग और उसकी व्याख्या अलग-अलग समूह द्वारा अलग-अलग ढंग से की जाती है। भारतीय सिने जगत के भी निर्माता - निर्देशकों ने फिल्मों में आदिवासियों की सभ्यता, संस्कृति, परंपराओं और रीति - रिवाज को अपने-अपने दृष्टिकोण से प्रदर्शित किया है।

सिनेमा और जनजातीय समुदाय

भारतीय सिनेमा का उदय हुए सौ वर्ष से भी अधिक हो गए हैं। भारतीय सिनेमा अपनी विविधता और सांस्कृतिक समृद्धि के लिए विश्व भर में प्रसिद्ध है। भारतीय सिनेमा ने केवल मनोरंजन का साधन है बल्कि समाज के विभिन्न पहलुओं को प्रतिबिंबित करने का एक शक्तिशाली माध्यम भी है। भारत की शुरुआती फिल्मों में आदिवासी चित्रण न के बराबर था क्योंकि उनकी फिल्मों का केंद्र बिन्दु धार्मिक और पौराणिक कहानियाँ होती थी। जैसे- राजा हरिश्चंद्र, मोहिनी भस्मासुर, सावित्री सत्यवान, कालिया मर्दन, श्री कृष्ण जन्म, लंका दहन, संत तुकाराम आदि। बाद के निर्माता – निर्देशकों ने फिल्मों मे आदिवासी चित्रण किया है। किन्तु ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के दौरान आदिवासी समुदायों को "असभ्य" और "पिछड़े" के रूप में देखा जाता था। यह दृष्टिकोण भारतीय सिनेमा में भी परिलक्षित हुआ। आदिवासी चरित्रों को अक्सर गौण भूमिकाओं में दिखाया गया। वे मुख्य कहानी का हिस्सा नहीं होते थे, बल्कि कहानी को "रोमांचक" बनाने के लिए उनके किरदार को उपयोग किया जाता था।

फिल्म निर्माता अक्सर आदिवासी समुदायों को एक "बाहरी" और "रहस्यमय" समूह के रूप में दिखाते थे, जो मुख्यधारा के समाज से अलग थे। आदिवासी चरित्रों को अक्सर "जंगली", "हिंसक" और "असभ्य" के रूप में दिखाया गया। उन्हें प्रकृति के साथ जुड़े हुए, लेकिन सभ्यता

से दूर माना जाता था। फिल्मों में आदिवासी संस्कृति को गलत तरीके से प्रस्तुत किया गया। उनकी वेशभूषा, रीति-रिवाज और जीवनशैली को अतिरंजित और गलत ढंग से दिखाया गया। आदिवासी समुदायों की वास्तविकता और उनके सामाजिक-आर्थिक संघर्षों को नजरअंदाज किया गया।

सिनेमा में आदिवासी चित्रण इस प्रकार से इसलिए था क्योंकि; बीसवी सदी के दूसरे दशक में प्रथम विश्व युद्ध प्रारंभ हो चुका था। और ब्रिटीश सरकार ने फिल्मों का उपयोग युद्ध के प्रचार और प्रोपेगेंडा फैलाने के रूप में शुरू कर दिया था। इसी विचार को ध्यान मे रखकर भारत में ब्रिटिश सरकार ने 1918 में *"इंडियन सिनेमैटोग्राफ एक्ट"* लागू कर दिया था। अतः निर्माता - निर्देशक फिल्मों को प्रतिबंध से बचाने के लिए सावधानी से फिल्मों का निर्माण करते थे। इसीलिए साम्राज्यवादी विचारों को जस का तस रखने का प्रयास रहता था।

स्वतंत्रता के बाद का सिनेमा

आजादी के बाद के कुछ दशकों में भी आदिवासियों को असभ्य , बर्बर दिखाया गया है। जैसे – सन् 1978 में निर्देशक कृष्ण शाह द्वारा निर्मित फ़िल्म ***"शालीमार"*** जो कि एक क्रॉसओवर सिनेमा थी (हॉलिवुड और बॉलीवुड के सम्मिलित प्रयासों से निर्मित फ़िल्म) इस फ़िल्म में आदिवासी समुदाय को मुख्य भूमि से अलग एक द्वीप पर रहते हुए दिखया गया है तथा उनके नृत्य संगीत को विचित्र तरीके से दर्शाया गया है

किन्तु बाद के वर्षों में खासकर समानांतर सिनेमा की शुरुआत के बाद से आदिवासी समुदाय की समस्या, शोषण, मुख्यधारा के लोगों द्वारा दौयम बर्ताव, संस्कृति, परंपरा, रीति रिवाज आदि को सिनेमा में दिखाया जाने लगा है। जैसे – मृगया, आक्रोश, हज़ार चौरासी की माँ, उलगुलन एक क्रांति, न्यूटन, आर.आर.आर, जोरम आदि।

मृगया (1976) - मृणाल सेन के निर्देशन में बनाई गई *"मृगया"* संभवत पहली बार आदिवासी केंद्रित फ़िल्म है जो कि आदिवसी रीति – रिवाजों, परंपराओं के साथ उनके जीवन संघर्ष , शोषण को दर्शाती है।

फ़िल्म की शुरुआत आदिवासी गीत , और उनकी दिनचर्या का दृश्य के साथ होती है। फिल्म में महाजनी शोषण को दिखाया गया है , जमीदारों का महिलाओं पर अत्याचार , ब्रिटिश हुकूमत से आदिवासियों का संबंध को दर्शाया गया है। आदिवासी संस्कृति के तौर पर विवाह संस्कार और नृत्य - संगीत को भी जीवंत रूप मे प्रदर्शित किया है। संथाल विद्रोह , सिद्धू – कनहू की संघर्ष की कहानी को भी बुजुर्ग आदिवासी द्वारा सुनाते देखा जा सकता है। किन्तु साथ ही सल्पू मुर्मू नामक आदिवासी युवक को जो ब्रिटिश हुकूमत और महाजनी व्यवस्था का विरोध करता है उसे लुटेरे के रूप में दर्शाया गया है। और अंत में मिथुन चक्रवर्ती द्वारा उसकी पत्नी पर अत्याचार करने वाले महाजन को मार दिया जाता है। उसे फांसी की सजा सुनाई जाती है। और अंत में उसे जब सूली पर चढ़ाया जाता है उसी समय सभी ग्रामीण आदिवासी एकत्र होकर उस ऊंचाई वाले स्थान पर जाते है; जहां से सूरज उगता हुआ दिखाई देता है। जो की एक नई क्रांति की शुरुआत को दर्शाता है।

आक्रोश (1980) - गोविंद निहलानी द्वारा निर्देशित *"आक्रोश"* फिल्म में आदिवासियों का चित्रण बहुत ही संवेदनशीलता और गहराई के साथ किया गया है। इस फिल्म में आदिवासियों को समाज के सबसे वंचित और शोषित वर्ग के रूप में दिखाया गया है।

फिल्म "आक्रोश" आदिवासी समाज और मुख्यधारा के लोगो के आसपास घूमती है। कहानी वर्ष 1978 के महाराष्ट्र के आदिवासी इलाके की है जहाँ एक आदिवासी लहान्या (ओम पुरी) पर आरोप है कि उसने अपनी पत्नी को कुँए में डुबोकर मार दिया है जिसके डिफेंस के लिये एक सरकारी वकील भास्कर (नसीरुद्दीन शाह) को रखा गया है जिसका यह पहला केस है। जबकि पब्लिक प्रोसिक्यूटर के रूप में दुशानये (अमरीश पुरी) है जो भास्कर के गुरु है और आदिवासी समाज से संबंध रखते है। जिनकी सोच आदिवासी समाज के लिए उचित नही है। भास्कर (नसीरुद्दीन शाह) पर हमले होना शुरू हो जाते है और उसे इस केस से हटाने का बार - बार प्रयास किया जाता है लेकिन वह हिम्मत के साथ जुटा रहता है। किन्तु उसे लहान्या (ओम पुरी), उसकी बहन और बूढ़े बाप से कोई सहयोग नही मिलता है।

काफी मशक्कत के बाद उसे एक मार्क्सवासी विचारधारा का क्रांतिकारी बताता है कि किस प्रकार सरकार और प्रशासन के लोगो ने ही लहान्या कि पत्नी (स्मिता पाटिल) के साथ बलात्कार किया है और कुँए में मारकर फैक दिया है। और सारा आरोप लहान्या (ओमपुरी) पर मढ़ दिया है और अब उसकी बहन पर भी उनकी बुरी नज़र है और उसके पिता की जान खतरे में है। कहानी का अंत अप्रत्याशित है क्योंकि पिता की मौत पर पिता को मुखाअग्नि देने के लिए जब वो जेल से आता है तो वो उन चारो दोषियों को नही मारता बल्कि अपनी बहन की ही कुल्हाड़ी से मारकर हत्या कर देता है, जो उसकी बहन उसे आंखों के इशारे से समझा देती है। यह घटना साफ स्पष्ट करती है कि लहान्या का किस प्रकार भारतीय न्याय और भ्रष्ट हो चुके तंत्र से विश्वास उठ चुका है और उसे पता होता है अब उसकी बहन के साथ भी हर हाल में बुरा होना निश्चित है। साथ ही यह भी प्रश्न रह जाता है कि क्या जेल से निकलने के बाद अब लहान्या भी न्याय के लिये नक्सलवाद का रास्ता अपनाएगा ?

हज़ार चौरासी की माँ (1998) -गोविंद निहलानी द्वारा निर्देशित फिल्म *"हज़ार चौरासी की माँ"* भारतीय समाज में व्याप्त असमानता, गरीबी, और वंचितों के संघर्षों को सामने लाती है फ़िल्म में नक्सलवाद, सामाजिक अन्याय, और मातृत्व के गहरे भावनात्मक पहलुओं को भी दर्शाया गया है। हालांकि फ़िल्म के मुख्य पात्र आदिवासी पृष्ठभूमि से नहीं हैं किन्तु फ़िल्म के मध्य में आदिवासी जीवन और उनके संघर्ष की कहानी है।

दिब्यनाथ चटर्जी, उनकी पत्नी सुजाता और इकलौता बेटे ब्रती, 1970 के दशक की शुरुआत में कलकत्ता, पश्चिम बंगाल, भारत में एक मध्यम वर्गीय जीवन जीते हैं। कहानी सुजाता चटर्जी (जया बच्चन) पर केंद्रित है, जो एक मध्यमवर्गीय महिला है। उसे अचानक पता चलता है कि उसका बेटा ब्रती (जॉय सेनगुप्ता) ; जो क्रांतिकारी गतिविधियों में शामिल था, नक्सल आंदोलन के दौरान मारा गया है। ब्रती का कोड नाम "हज़ार चौरासी" था, और सरकारी दस्तावेज़ों में उसकी पहचान केवल एक नंबर बनकर रह जाती है। सुजाता की यात्रा अपने बेटे की पहचान को समझने और उसकी विचारधारा को जानने की कोशिश की कहानी है। आदिवासी दृष्टिकोण की बात करें तो फ़िल्म में यह दिखाया गया है कि एक तरफ मध्यमवर्गीय परिवार के लड़के की मृत्यु होने और दूसरी तरफ एक गरीब आदिवासी लड़के की मृत्यु होने पर दोनों के परिवार को क्या-क्या झेलना पड़ता है। तथा आदिवासी समाज पर होने वाले अत्याचार को दर्शाया गया है।

उलगुलन एक क्रांति (2004) - "उलगुलन एक क्रांति" अशोक शरण द्वारा निर्देशित एक ऐतिहासिक फिल्म है, जो भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और आदिवासी अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाले महान नेता बिरसा मुंडा के जीवन और उनके द्वारा किए गए विद्रोह (उलगुलान) पर

आधारित है। यह फिल्म बिरसा मुंडा के संघर्ष, उनके नेतृत्व कौशल, और आदिवासी समुदायों के प्रति उनके योगदान को दर्शाती है। फिल्म का उद्देश्य बिरसा मुंडा की विरासत को आधुनिक समय में पुनर्जीवित करना और आदिवासी अधिकारों के प्रति जागरूकता फैलाना है।

वर्तमान सिनेमा

वर्तमान समय में सिनेमा एक व्यापक रूप धारण कर चुका है यह अब सिर्फ साप्ताहिक ना होकर प्रतिदिन का हो गया है। ओटीटी प्लेटफार्म और इंटरनेट के आने के बाद से सिनेमा की पहुंच हर हाथों तक हो चुकी है। हालांकि अभी भी कई फिल्मों में आदिवासी चरित्रों को नकारात्मक रूप में रूप में दिखाया जाता है जैसे - ***"बाहुबली"*** (2015) जैसी फ़िल्म में आदिवासी पात्र कालकेया को जनजाति व्यक्ति के रूप में दिखाया गया हैं। फिल्म में कालकेया का चित्रण बर्बरता और आदिमता का संकेत देने वाले क्रूर व्यक्ति दिखाया है। कालकेया जनजाति को गहरे काले रंग की त्वचा, मोटे वस्त्र, और हिंसक व्यवहार के साथ दर्शाया गया है-ऐसे तत्व जो "उदात्तजंगली" के औपनिवेशिक कालीन रूढ़ियों को जगाते हैं। बाहुबली में आदिवासी पात्र मुख्यतः खलनायक की भूमिका में हैं, जो नायकों की परिष्कृत वीरता के विपरीत कार्य करते हैं। यह प्रस्तुति इस विचार को मजबूत करती है कि आदिवासी समुदाय "अन्य" हैं, जो केवल मुख्यधारा के सभ्य समाज के विपरीत दिखाने के लिए मौजूद हैं।

किन्तु वर्तमान समय में संवेदनशीलता बढ़ी है। गरीब, शोषित, अल्पसंख्यक तथा मुख्यधारा से अलग लोगों की समस्याओं को प्रदर्शित करने वाली फिल्मों का निर्माण भी हो रहा है। साथ ही उनकी समस्याओं के निराकरण या उनके आत्मसम्मान को प्रकट करने वाली फिल्मों का निर्माण भी हो रहा है। जैसे -

न्यूटन (2017) - अमित वी. मसुरकर द्वारा निर्देशित फिल्म *"न्यूटन"* एक ऐसी फिल्म है जो व्यंग्यात्मक और संवेदनशील तरीके से भारतीय लोकतंत्र, चुनावी प्रक्रिया, और आदिवासी क्षेत्रों में प्रशासनिक तंत्र के संघर्षों पर प्रकाश डालती है।

फिल्म की कहानी न्यूटन कुमार (राजकुमार राव) के इर्द-गिर्द घूमती है, जो एक ईमानदार और आदर्शवादी सरकारी कर्मचारी है। न्यूटन को नक्सल प्रभावित छत्तीसगढ़ के आदिवासी क्षेत्र में चुनावी ड्यूटी सौंपी जाती है। क्षेत्र में चुनाव कराना चुनौतीपूर्ण है क्योंकि वहां के स्थानीय आदिवासी समाज को लोकतंत्र की प्रक्रिया और महत्व के बारे में जानकारी नहीं है। न्यूटन आदिवासियों को वोट डालने के उनके अधिकार के प्रति जागरूक करने और निष्पक्ष चुनाव कराने के लिए संघर्ष करता है, जबकि उसे सुरक्षाबलों और सरकारी तंत्र के उदासीन रवैये का सामना करना पड़ता है। जैसे - रघुबीर यादव (लोकनाथ) का किरदार सरकारी कर्मचारियों की लापरवाही और उदासीनता को दर्शाता है। फिल्म में आदिवासी समुदाय को उनके वास्तविक और संवेदनशील रूप में प्रस्तुत किया गया है। साथ ही फिल्म में नक्सल प्रभावित क्षेत्रों की वास्तविकताओं को दिखाया गया है कि आदिवासी समुदाय सरकारी तंत्र से किस तरह खोफ खाए बैठा है और यह खौफ उन्हे नक्सलवादी विचारधारा के महत्व की ओर आकर्षित कर सकता है।

जोरम (2023) - 'जोरम' आदिवासी संघर्षों को व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों दृष्टिकोणों से दिखाती है। इस फिल्म में प्रमुख किरदार आदिवासी व्यक्ति के रूप में दिखाया गया है, जो अपने अधिकारों और अस्तित्व के लिए संघर्ष करता है। फिल्म में विस्थापन, भूमि अधिकार,

और सरकार द्वारा आदिवासियों के शोषण के मुद्दे उठाए गए हैं। यह फिल्म एक आदिवासी व्यक्ति की मानवता को उजागर करती है, जिससे दर्शक उनके संघर्षों से जुड़ाव महसूस करते हैं।

काला पानी (2023, वेब सीरीज) - 'काला पानी' अंडमान-निकोबार द्वीपों की पृष्ठभूमि में आदिवासी समुदायों की जटिलताओं और संघर्षों को दिखाती है। यह वेब सीरीज पर्यावरण, पारिस्थितिकी और आधुनिकता के कारण आदिवासियों के जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों पर केंद्रित है। पहली बार, आदिवासी समाज को न केवल पीड़ित के रूप में, बल्कि पर्यावरण के संरक्षक और जटिल व्यक्तित्वों के साथ दिखाया गया है।

इनके अतिरिक्त **अरण्ये दिनरात्री, दिशा, लगान, चक्रव्यूह, असूरन, जय भीम** जैसी फ़िल्मे भी आदिवासी जीवन व मुद्दों पर प्रकाश डालती है। ये फ़िल्मे तो मात्र कहानी भर है लेकिन ये आदिवासी जीवन की सच्चाई को दर्शाती है। और हमारे सामने प्रश्न छोड़ जाती है कि क्यों आज़ादी के बाद से लगभग 50% आदिवासी अपने घरों को छोड़कर कही और जाने को विवश हुए है। इनकी मूलभूत समस्या क्या है ? क्यों भारतीय शासन व्यवस्था के प्रति इनका असंतोष है ? क्यों नक्सली इन्हें आसानी से न्याय दिलाने के नाम पर अपनी ओर मिला लेते है ? मुख्य धारा का समाज इतना अनैतिक क्यों है कि इनके समुदाय का व्यक्ति भी जब मुख्यधारा में शामिल होता है, तो इनसे जुड़ने के बजाय दूर हो जाता है।

भारत में जनजाति समुदाय देश की आबादी का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है यह समुदाय अपनी अनूठी संस्कृति, परंपराओं और जीवन शैली के लिए जाने जाते हैं। सिनेमा जैसा माध्यम इन समुदायों को एक पहचान दे सकता है, राष्ट्र हित के लिए उनके कार्यों को, नायकों को तथा उनके मुद्दों को राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर ला सकता है।

संदर्भ सूची :-

1. मिश्र, एस., *जनजातीय समुदाय और मीडिया*, मुंबई, साहित्य अकादमी, 2015
2. कुमार, के., *भारतीय सिनेमा और सामाजिक यथार्थ*, नई दिल्ली राजकमल प्रकाशन, 2010
3. श्रीवास्तव, संजीव, *समय, सिनेमा और इतिहास; हिंदी सिनेमा के सौ साल*, प्रकाशन विभाग, सुचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, 2014
4. पारख, जवरीमल्ल, *हिन्दी सिनेमा मे बदलते यथार्थ की अभिव्यक्ति*, दिल्ली, नई किताब प्रकाशन , 2021
5. सिन्हा, प्रसून, भा*रतीय सिनेमा एक अनंत यात्रा; सिनेमा देश काल और समाज एक अध्ययन*, दिल्ली श्री नटराज प्रकाशन, 2019
6. योजना, अंक 8 *सिनेमा और समाज (स्वतंत्रता दिवस विशेषांक*, , प्रकाशन विभाग, सूचना प्रसारण मंत्रालय, अगस्त 1995
7. आजकल, अंक जनवरी, प्रकाशन विभाग, सूचना प्रसारण मंत्रालय, 2008